

प्रेमचंद की रचनाओं में सामाजिक विषमता और मानवीय संवेदनाओं का चित्रण

के एम तरुणा देवी¹, डॉ. श्वेता गर्ग²

¹शोधार्थी, हिंदी विभाग, महाकौशल विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश, भारत

²सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, महाकौशल विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश

मुंशी प्रेमचंद हिंदी साहित्य के उस युगांतरकारी हस्ताक्षर हैं जिन्होंने कथा-साहित्य को दरबारी विलासिता और रोमानी कल्पना से निकालकर आम जनमानस, विशेषतः किसान, स्त्री और शोषित वर्ग के यथार्थ जीवन-संघर्ष से जोड़ा। प्रस्तुत शोध-पत्र पूर्व में हुए अकादमिक अध्ययनों, आलोचनात्मक लेखों और शोध-प्रबंधों की व्यवस्थित समीक्षा (मेटा-विश्लेषण) के माध्यम से यह समझने का प्रयास करता है कि प्रेमचंद की रचनाओं-विशेषकर गोदान, गबन, रंगभूमि, निर्मला, कर्मभूमि तथा उनकी प्रमुख कहानियों में सामाजिक विषमता (जातिगत भेदभाव, आर्थिक शोषण, स्त्री-उत्पीड़न, सामंती दमन) और मानवीय संवेदनाओं (करुणा, आत्मसम्मान, त्याग, विद्रोह) का चित्रण किस प्रकार हुआ है। [1] अध्ययन में गुणात्मक विषयवस्तु-विश्लेषण पद्धति अपनाई गई है, जिसके अंतर्गत विगत छह दशकों में प्रकाशित प्रमुख हिंदी एवं अंग्रेजी आलोचनात्मक स्रोतों को विषयगत रूप से वर्गीकृत कर उनका तुलनात्मक मूल्यांकन किया गया है। पत्र में प्रेमचंद-साहित्य पर हुए शोध की मात्रात्मक प्रवृत्तियों, प्रमुख आलोचकों के दृष्टिकोणों में भिन्नता, तथा अनुसंधान में विद्यमान रिक्तियों (गैप्स) को भी रेखांकित किया गया है। [2] निष्कर्षतः यह पाया गया कि प्रेमचंद का साहित्य केवल सामाजिक दस्तावेज़ नहीं बल्कि मानवीय गरिमा की पुनर्स्थापना का सशक्त माध्यम है, तथा उनकी प्रासंगिकता आज भी असमान भारतीय समाज-व्यवस्था के संदर्भ में अक्षुण्ण बनी हुई है। यह समीक्षा भविष्य के शोधार्थियों के लिए एक संदर्भ-आधार तैयार करती है।

मुख्य शब्द: प्रेमचंद, सामाजिक विषमता, मानवीय संवेदना, हिंदी साहित्य, यथार्थवाद, किसान-जीवन, नारी-विमर्श

1. प्रस्तावना

1.1 प्रेमचंद: साहित्यिक परिचय और युगीन संदर्भ

मुंशी प्रेमचंद (1880-1936) का हिंदी-उर्दू कथा-साहित्य में वही स्थान है, जो अंग्रेज़ी में चार्ल्स डिकेंस अथवा रूसी साहित्य में लियो टॉल्स्टॉय का माना जाता है। उन्होंने उपन्यास और कहानी को आदर्शवादी रूमनियत से निकालकर यथार्थवाद की ठोस ज़मीन पर स्थापित किया। उनका लेखन-काल औपनिवेशिक भारत के उस दौर से मेल खाता है, जब स्वतंत्रता आंदोलन, गांधीवादी विचारधारा, किसान आंदोलन और सामाजिक-सुधार आंदोलन एक साथ सक्रिय थे। इस युगीन हलचल ने उनकी रचनाओं की विषयवस्तु को गहराई से प्रभावित किया। [3] प्रेमचंद ने ग्राम्य जीवन, सामंती शोषण, कर्ज़ में डूबे किसान, विधवा स्त्री की पीड़ा और दलित वर्ग के अपमान को अपनी कहानियों और उपन्यासों का केंद्रीय विषय बनाया। उनकी दृष्टि केवल सामाजिक आलोचना तक सीमित नहीं रही, बल्कि उन्होंने पात्रों के भीतर की मानवीय संवेदना-प्रेम, त्याग, आत्मग्लानि, विद्रोह और करुणा-को भी बारीकी से उकेरा। यही द्वैत-सामाजिक यथार्थ और मानवीय अंतर्मन-उनके साहित्य को कालजयी बनाता है।

1.2 अध्ययन की पृष्ठभूमि और आवश्यकता

विगत एक शताब्दी में प्रेमचंद के साहित्य पर अनगिनत आलोचनात्मक ग्रंथ, शोध-प्रबंध और शोध-पत्र लिखे जा चुके हैं। रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, कमल किशोर गोयनका, मदन गोपाल तथा अन्य विद्वानों ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों-मार्क्सवादी, गांधीवादी, स्त्रीवादी, दलित-विमर्शमूलक से उनके साहित्य का मूल्यांकन किया है। [4][5] किंतु इतने विशाल आलोचना-साहित्य के बावजूद एक समेकित, व्यवस्थित मेटा-विश्लेषणात्मक अध्ययन की कमी महसूस होती है, जो इन विविध दृष्टिकोणों को एक सूत्र में पिरोकर यह दिखा सके कि समय के साथ प्रेमचंद-आलोचना की दिशा कैसे बदली, किन विषयों पर अधिक बल दिया गया और कौन-से पक्ष अपेक्षाकृत उपेक्षित रह गए। प्रस्तुत अध्ययन इसी रिक्तता को भरने का प्रयास करता है, ताकि भविष्य के शोधार्थियों को एक ठोस संदर्भ-बिंदु उपलब्ध हो सके।

1.3 शोध के उद्देश्य

इस शोध-पत्र के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं: प्रथम, प्रेमचंद की प्रतिनिधि रचनाओं में चित्रित सामाजिक विषमता के विविध रूपों-जातिगत, आर्थिक, लैंगिक और सामंती की पहचान करना। द्वितीय, इन रचनाओं में निहित मानवीय संवेदनाओं के स्वरूप और उनके सामाजिक यथार्थ से अंतर्संबंध का विश्लेषण करना। तृतीय, विगत दशकों में प्रकाशित आलोचनात्मक साहित्य की व्यवस्थित समीक्षा के माध्यम से शोध-प्रवृत्तियों का मानचित्रण करना। चतुर्थ, विद्यमान शोध में अंतराल की पहचान कर भावी अनुसंधान हेतु दिशा-निर्देश प्रस्तुत करना। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अध्ययन को व्यवस्थित सर्वेक्षण, तुलनात्मक आलोचना और विषयगत संश्लेषण के त्रि-स्तरीय ढांचे में संचालित किया गया है।

2. पूर्व-कार्य का सर्वेक्षण

प्रेमचंद-साहित्य पर हुए पूर्ववर्ती शोध की समीक्षा करने पर यह स्पष्ट होता है कि आलोचकों ने मुख्यतः चार व्यापक दृष्टिकोणों से उनके साहित्य का मूल्यांकन किया है, सामाजिक-यथार्थवादी दृष्टिकोण, मार्क्सवादी/वर्ग-संघर्षमूलक दृष्टिकोण, स्त्रीवादी दृष्टिकोण, तथा दलित-विमर्शमूलक दृष्टिकोण। रामविलास शर्मा ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "प्रेमचंद और उनका युग" में प्रेमचंद को किसान-जीवन के सबसे प्रामाणिक चित्तेरे के रूप में प्रस्तुत किया तथा उनके साहित्य को औपनिवेशिक कृषि-अर्थव्यवस्था के शोषण-चक्र के दस्तावेज़ के रूप में विश्लेषित किया। शर्मा का यह अध्ययन आगे चलकर अनेक शोधार्थियों के लिए आधार-ग्रंथ बना, जिन्होंने गोदान के होरी और धनिया के चरित्रों को औपनिवेशिक भारत में किसान की असहाय स्थिति के प्रतीक के रूप में व्याख्यायित किया। नामवर सिंह जैसे आलोचकों ने प्रेमचंद के साहित्य को केवल सामाजिक दस्तावेज़ न मानकर उसकी कलात्मक संरचना, कथा-शिल्प और चरित्र-चित्रण की सूक्ष्मता पर भी बल दिया। उनका तर्क था, कि प्रेमचंद का यथार्थवाद कोरा प्रतिबिंबवाद नहीं है, बल्कि वे यथार्थ को मानवीय आदर्श के साथ संतुलित करते हुए एक विशिष्ट "आदर्शान्मुख यथार्थवाद" रचते हैं।^[6] इस दृष्टिकोण ने आलोचना-जगत में एक नई बहस को जन्म दिया कि क्या प्रेमचंद का आदर्शवाद उनके यथार्थवादी चित्रण को कमज़ोर करता है या उसे और अधिक प्रभावी बनाता है। कमल किशोर गोयनका के अध्ययन इस दिशा में विशेष उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने प्रेमचंद की पांडुलिपियों, पत्रों और प्रारूपों के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से उनकी रचना-प्रक्रिया को उजागर किया तथा यह दिखाया कि किस प्रकार प्रेमचंद बार-बार पुनर्लेखन के माध्यम से अपने पात्रों की मानवीय संवेदनाओं को अधिकाधिक प्रामाणिक बनाते गए।

स्त्रीवादी दृष्टिकोण से किए गए अध्ययनों में निर्मला, सेवासदन और गबन जैसी रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया गया है। कई शोधार्थियों ने तर्क दिया है कि प्रेमचंद स्त्री-उत्पीड़न को दहेज-प्रथा, बेमेल विवाह, विधवा-जीवन की यातना और पितृसत्तात्मक नियंत्रण के संदर्भ में उजागर करते हुए स्त्री-पात्रों को केवल पीड़िता के रूप में नहीं बल्कि प्रतिरोध की क्षमता रखने वाले सशक्त चरित्रों के रूप में भी चित्रित करते हैं।^{[7][8]} निर्मला की केंद्रीय पात्र के माध्यम से बाल-विवाह और असमान विवाह-व्यवस्था की सामाजिक त्रासदी को जिस संवेदनशीलता से उकेरा गया है, उसे अनेक आलोचकों ने हिंदी उपन्यास-परंपरा में एक मील का पत्थर माना है। यद्यपि कुछ समकालीन स्त्रीवादी आलोचकों ने यह भी रेखांकित किया है कि प्रेमचंद के कुछ आदर्शवादी समाधान जैसे त्याग और आत्म-बलिदान का महिमामंडन-पितृसत्तात्मक मूल्यों को अप्रत्यक्ष रूप से पुनः स्थापित कर देते हैं, जो अध्ययन के इस क्षेत्र में एक सार्थक बहस का बिंदु बना हुआ है। दलित-विमर्श की दृष्टि से हुए अध्ययनों में प्रेमचंद के जाति-

चित्रण को लेकर मिश्रित मूल्यांकन सामने आए हैं।[9] एक ओर विद्वानों ने "सद्गति", "ठाकुर का कुआं" तथा "कफ़न" जैसी कहानियों में जातिगत भेदभाव और दलित-शोषण के मार्मिक चित्रण की सराहना की है, तो दूसरी ओर कुछ दलित-चिंतकों ने यह प्रश्न भी उठाया है, कि क्या प्रेमचंद, स्वयं एक गैर-दलित लेखक होने के नाते, दलित पात्रों को पूर्णतः आत्मनिर्णय-सक्षम विषय (सब्जेक्ट) के रूप में प्रस्तुत कर पाते हैं या वे करुणा के पात्र (ऑब्जेक्ट) बनकर रह जाते हैं। यह बहस साहित्यिक प्रतिनिधित्व और लेखकीय स्थिति (पोज़िशनैलिटी) के व्यापक सैद्धांतिक प्रश्न से भी जुड़ती है, जिसे कई शोध-प्रबंधों में विस्तार से विश्लेषित किया गया है।

तुलनात्मक साहित्य के क्षेत्र में हुए अध्ययनों ने प्रेमचंद की तुलना टॉल्स्टॉय, गोर्की, बालज़ाक तथा शरतचंद्र जैसे विश्व-साहित्य के यथार्थवादी लेखकों से की है। इन तुलनात्मक अध्ययनों में सामान्यतः यह निष्कर्ष निकाला गया है कि प्रेमचंद का यथार्थवाद यूरोपीय यथार्थवाद से इस अर्थ में भिन्न है कि वह भारतीय ग्राम्य-समाज, संयुक्त परिवार-व्यवस्था और औपनिवेशिक कृषि-संबंधों की विशिष्ट परिस्थितियों से उपजा है, जिसमें नैतिक-आध्यात्मिक तत्व भी अंतर्निहित रहता है।[10] शरतचंद्र के साथ तुलना करने वाले अध्ययनों ने दोनों लेखकों में करुणा और सामाजिक सुधार की समान चेतना को रेखांकित किया है, यद्यपि प्रेमचंद के यहाँ ग्रामीण यथार्थ अधिक प्रधान है जबकि शरतचंद्र नगरीय-मध्यवर्गीय संवेदना पर अधिक केंद्रित रहते हैं। गोदान पर केंद्रित शोध-साहित्य विशेष रूप से विपुल है।[25] अनेक विद्वानों ने इसे प्रेमचंद के साहित्यिक विकास की चरम परिणति माना है, जिसमें ग्रामीण और नगरीय-दोनों समाजों का समानांतर चित्रण हुआ है। होरी की त्रासदी को कई आलोचकों ने औपनिवेशिक भारत में किसान की संरचनात्मक दासता के रूपक के रूप में पढ़ा है, जहाँ ऋण, लगान, सामाजिक प्रतिष्ठा की चिंता और धार्मिक कर्मकांड मिलकर उसे शोषण के जाल में जकड़े रखते हैं।[11] वहीं मेहता और मालती जैसे नगरीय पात्रों के माध्यम से शिक्षित मध्यवर्ग के नैतिक द्वंद्व और सामाजिक-सुधार की सीमाओं को भी अनेक अध्ययनों में विश्लेषित किया गया है।

कहानी-साहित्य पर केंद्रित समीक्षाओं में "पूँस की रात", "बड़े घर की बेटी", "ईदगाह", "पंच परमेश्वर" और "नमक का दारोगा" जैसी कहानियों को बार-बार विश्लेषण का विषय बनाया गया है। शोधकर्ताओं ने इन कहानियों में लघु-कथा शिल्प के माध्यम से बड़े सामाजिक प्रश्नों—गरीबी, न्याय, बाल-मनोविज्ञान, ग्राम-पंचायत व्यवस्था और भ्रष्टाचार—को संक्षिप्त किंतु प्रभावी रूप में प्रस्तुत करने की प्रेमचंद की कला की सराहना की है। इन अध्ययनों से यह भी स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद के छोटे-छोटे पात्र—हामिद, अलगू चौधरी, जुम्मन शेख—मानवीय गरिमा और सामुदायिक न्याय-बोध के प्रतिनिधि बनकर उभरते हैं। हाल के वर्षों में हुए डिजिटल मानविकी (डिजिटल ह्यूमैनिटीज़) आधारित अध्ययनों ने कम्प्यूटेशनल टेक्स्ट-विश्लेषण के माध्यम से प्रेमचंद के शब्द-प्रयोग, पात्र-

आवृत्ति और विषयगत रुझानों का मात्रात्मक विश्लेषण भी प्रारंभ किया है। यद्यपि यह क्षेत्र अभी प्रारंभिक अवस्था में है,[12][13] किंतु इसने परंपरागत आलोचनात्मक निष्कर्षों को सांख्यिकीय आधार प्रदान करने की संभावना खोली है, जैसे यह दिखाना कि प्रेमचंद के उपन्यासों में "ऋण", "लगान" और "मान-मर्यादा" जैसे शब्द किस आवृत्ति से प्रयुक्त हुए हैं और वे कथा-गति को किस प्रकार प्रभावित करते हैं। समग्रतः पूर्ववर्ती शोध-साहित्य की समीक्षा से यह प्रतीत होता है कि प्रेमचंद-आलोचना समय के साथ एकांगी सामाजिक-दस्तावेजीकरण से आगे बढ़कर बहु-आयामी, अंतर्विषयी (इंटरडिसिप्लिनरी) स्वरूप ग्रहण करती गई है, जिसमें साहित्यिक सौंदर्यशास्त्र, सामाजिक इतिहास, लैंगिक अध्ययन और डिजिटल पद्धतियाँ परस्पर संवाद में हैं।[14] किंतु इस विपुल साहित्य के बावजूद एक समेकित मेटा-विश्लेषणात्मक संश्लेषण का अभाव इस क्षेत्र में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है, जिसे प्रस्तुत अध्ययन संबोधित करने का प्रयास करता है।

3. शोध-पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक शोध-पद्धति पर आधारित एक समीक्षात्मक मेटा-विश्लेषण है, जिसका उद्देश्य प्रेमचंद-साहित्य पर विगत छह दशकों (1960 से 2020 के दशक तक) में प्रकाशित प्रमुख आलोचनात्मक ग्रंथों, शोध-पत्रों, शोध-प्रबंधों और सम्मेलन-पत्रों का व्यवस्थित संकलन एवं वर्गीकरण करना है। स्रोत-सामग्री के चयन हेतु समावेशन-मानदंड (इन्क्लूजन क्राइटेरिया) निर्धारित किए गए, जिनमें प्रमुख रूप से हिंदी एवं अंग्रेज़ी भाषा में प्रकाशित पीयर-रिव्यूड शोध-पत्र, मान्यता-प्राप्त प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित आलोचनात्मक ग्रंथ, तथा विश्वविद्यालयों में स्वीकृत शोध-प्रबंध सम्मिलित किए गए। इसके विपरीत, गैर-अकादमिक लोकप्रिय लेखों तथा असत्यापित ऑनलाइन सामग्री को अध्ययन से बाहर रखा गया।[15] प्रथम चरण में प्राथमिक पाठ्य-सामग्री के रूप में प्रेमचंद के छह प्रमुख उपन्यासों (सेवासदन, रंगभूमि, निर्मला, कर्मभूमि, गबन, गोदान) तथा पंद्रह प्रतिनिधि कहानियों का चयन किया गया। द्वितीय चरण में इन रचनाओं से संबंधित आलोचनात्मक स्रोतों को विषयगत कोडिंग (थीमैटिक कोडिंग) पद्धति के माध्यम से चार व्यापक श्रेणियों—सामाजिक-आर्थिक विषमता, लैंगिक उत्पीड़न, जातिगत भेदभाव, तथा मानवीय संवेदना/नैतिक द्वंद्व—में वर्गीकृत किया गया। यह कोडिंग प्रक्रिया आवर्ती (इटरेटिव) रूप से संचालित की गई, जिसमें प्रारंभिक कोड-बुक को स्रोत-सामग्री के अध्ययन के साथ-साथ परिष्कृत किया जाता रहा, ताकि वर्गीकरण अधिकाधिक सटीक बन सके। तृतीय चरण में तुलनात्मक विश्लेषण की पद्धति अपनाते हुए[16] विभिन्न आलोचकों के दृष्टिकोणों में समानता, विरोधाभास और वैचारिक विकास-क्रम की पहचान की गई, तथा समय-अनुक्रम (क्रोनोलॉजिकल) के आधार पर यह देखा गया कि प्रेमचंद-आलोचना की प्रवृत्तियाँ किस प्रकार बदलती गईं। अंततः संश्लेषणात्मक (सिंथेसिस) चरण में इन निष्कर्षों को समेकित कर प्रस्तुत शोध-पत्र के

आलोचनात्मक विश्लेषण एवं विमर्श खंडों में संगठित किया गया। इस बहु-चरणीय पद्धति के माध्यम से अध्ययन ने न केवल विषयवस्तु-आधारित बल्कि ऐतिहासिक-विकासात्मक दृष्टिकोण से भी पूर्व-कार्य का समग्र मूल्यांकन सुनिश्चित किया है।

4. पूर्व-कार्य का आलोचनात्मक विश्लेषण

पूर्ववर्ती शोध-साहित्य की आलोचनात्मक समीक्षा से कई महत्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ और सीमाएँ उभरकर सामने आती हैं। सर्वप्रथम, मार्क्सवादी दृष्टिकोण से किए गए अध्ययन, विशेषतः रामविलास शर्मा की परंपरा में, प्रेमचंद के साहित्य को वर्ग-संघर्ष के ढांचे में व्याख्यायित करने में अत्यंत प्रभावी रहे हैं, किंतु इस दृष्टिकोण की एक सीमा यह रही है कि यह कभी-कभी पात्रों की वैयक्तिक मनोवैज्ञानिक जटिलता को आर्थिक निर्धारणवाद (इकनॉमिक डिटरमिनिज्म) के अधीन कर देता है। उदाहरणार्थ, होरी के चरित्र का विश्लेषण प्रायः केवल आर्थिक शोषण के शिकार के रूप में किया गया है, जबकि उसकी आत्म-सम्मान की चाह, धार्मिक आस्था और पारिवारिक कर्तव्य-बोध जैसे मानवीय आयाम अपेक्षाकृत कम विश्लेषित हुए हैं।^[17] यह असंतुलन इंगित करता है कि सामाजिक-आर्थिक व्याख्या और मनोवैज्ञानिक-मानवीय व्याख्या के बीच एक समेकित दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिसे अधिकांश पूर्व-अध्ययन पूर्णतः पूरा नहीं कर पाए। द्वितीय, स्त्रीवादी आलोचना के क्षेत्र में यद्यपि उल्लेखनीय कार्य हुआ है, तथापि अधिकांश अध्ययन निर्मला और सेवासदन जैसी सीमित रचनाओं तक केंद्रित रहे हैं, जबकि गोदान की धनिया अथवा कर्मभूमि की सुखदा जैसे स्त्री-पात्रों पर तुलनात्मक रूप से कम गहन विश्लेषण उपलब्ध है।^[24] इसके अतिरिक्त, यह भी देखा गया है कि प्रारंभिक स्त्रीवादी अध्ययनों में प्रेमचंद को प्रायः या तो पूर्णतः प्रगतिशील अथवा पूर्णतः परंपरावादी के रूप में द्विआधारी (बाइनरी) खांचों में रखा गया, जबकि उनकी रचनाओं में विद्यमान अंतर्विरोध—जहाँ वे स्त्री-उत्पीड़न की तीखी आलोचना करते हुए भी कभी-कभी आदर्शवादी त्याग का महिमामंडन कर बैठते हैं—को पर्याप्त सूक्ष्मता से नहीं परखा गया। हाल के कुछ अध्ययनों ने इस द्विआधारी दृष्टिकोण को चुनौती देना प्रारंभ किया है, किंतु यह क्षेत्र अभी भी विकासशील अवस्था में है।

तृतीय, दलित-विमर्शमूलक आलोचना ने प्रेमचंद के जाति-चित्रण पर महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए हैं, किंतु इस बहस में प्रायः यह द्वंद्व अनसुलझा रह जाता है कि क्या लेखकीय सहानुभूति (एम्पैथी) पर्याप्त है या प्रतिनिधित्व के लिए दलित-दृष्टिकोण से रचित आत्म-कथन आवश्यक है। कई अध्ययन इस सैद्धांतिक प्रश्न को केवल उठाकर छोड़ देते हैं, बिना प्रेमचंद की कहानियों के गहन पाठ-विश्लेषण के माध्यम से ठोस निष्कर्ष तक पहुँचे। यह पद्धतिगत कमी भविष्य के शोध के लिए एक स्पष्ट अवसर प्रस्तुत करती है। चतुर्थ, तुलनात्मक साहित्यिक अध्ययनों की समीक्षा से यह प्रतीत होता है कि प्रेमचंद की तुलना पाश्चात्य यथार्थवादी लेखकों से करने वाले

अधिकांश कार्य विषयगत समानताओं तक सीमित रहे हैं, जबकि शिल्पगत (नैरेटिव तकनीक, दृष्टिकोण-प्रयोग, संवाद-शैली) तुलनात्मक विश्लेषण अपेक्षाकृत कम हुआ है। इसी प्रकार, डिजिटल मानविकी आधारित मात्रात्मक अध्ययन, यद्यपि नवाचारी हैं, किंतु अभी तक परंपरागत गुणात्मक आलोचना के साथ पर्याप्त रूप से समन्वित नहीं हो पाए हैं—अर्थात् मात्रात्मक निष्कर्षों (जैसे शब्द-आवृत्ति) की गुणात्मक व्याख्या (जैसे उनका सामाजिक-सांस्कृतिक अर्थ) प्रायः सतही स्तर पर ही रह जाती है।[18] अंततः, समग्र आलोचनात्मक साहित्य के मेटा-स्तरीय अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि पूर्व-कार्य में विषयगत गहराई तो पर्याप्त है, किंतु क्रमबद्ध, अंतर-दशकीय तुलनात्मक संश्लेषण का अभाव रहा है। अधिकांश अध्ययन एकल रचना अथवा एकल दृष्टिकोण तक सीमित रहे हैं, जिससे यह समझना कठिन हो जाता है कि प्रेमचंद-आलोचना समग्रतः किस दिशा में विकसित हुई है। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी रिक्तता को आंशिक रूप से भरने का प्रयास करते हुए एक समेकित, बहु-आयामी मूल्यांकन प्रस्तुत करता है, जो सामाजिक-आर्थिक, लैंगिक, जातिगत और मानवीय-मनोवैज्ञानिक आयामों को एक साथ संबोधित करता है।

5. विमर्श

प्रस्तुत मेटा-विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष यह दर्शाते हैं कि प्रेमचंद के साहित्य में सामाजिक विषमता और मानवीय संवेदना परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि पूरक तत्वों के रूप में गुंथी हुई हैं।[19] जहाँ एक ओर उनकी रचनाएँ आर्थिक शोषण, जातिगत भेदभाव और लैंगिक उत्पीड़न का प्रामाणिक सामाजिक-इतिहास प्रस्तुत करती हैं, वहीं दूसरी ओर पात्रों की आंतरिक द्वंद्व-यात्रा-आत्म-सम्मान बनाम विवशता, कर्तव्य बनाम इच्छा, परंपरा बनाम आधुनिकता—साहित्य को केवल समाजशास्त्रीय दस्तावेज़ से ऊपर उठाकर एक गहन मानवीय अनुभव में परिणत कर देती है।[20] यह द्वैत ही प्रेमचंद-आलोचना में विविध दृष्टिकोणों—मार्क्सवादी, स्त्रीवादी, दलित-विमर्शमूलक के सहअस्तित्व की व्याख्या करता है, क्योंकि प्रत्येक दृष्टिकोण इस बहुस्तरीय पाठ के किसी एक आयाम पर केंद्रित होकर आंशिक सत्य को उद्घाटित करता है। अध्ययन के निष्कर्ष यह भी संकेत करते हैं कि समय के साथ प्रेमचंद-आलोचना एकल-दृष्टिकोणीय व्याख्या से बहु-दृष्टिकोणीय, अंतर्विषयी संश्लेषण की ओर अग्रसर हुई है।[21][22] आरंभिक दशकों में जहाँ सामाजिक-यथार्थवादी और मार्क्सवादी व्याख्याएँ प्रमुख थीं, वहीं बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और इक्कीसवीं शताब्दी में स्त्रीवादी, उत्तर-औपनिवेशिक और दलित-विमर्शमूलक दृष्टिकोणों ने आलोचना को अधिक बहुध्वनिक (पॉलीफोनिक) बनाया है। यह विकास-क्रम न केवल साहित्यिक आलोचना की व्यापक बौद्धिक प्रवृत्तियों को प्रतिबिंबित करता है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि प्रेमचंद का साहित्य इतना बहुआयामी है कि वह प्रत्येक नई सैद्धांतिक दृष्टि से नए अर्थ उद्घाटित करने की क्षमता रखता है। साथ ही,

यह अध्ययन कुछ सीमाओं को भी रेखांकित करता है। चूँकि यह एक द्वितीयक स्रोत-आधारित समीक्षा है, अतः इसमें मौलिक पाठ-विश्लेषण की गहराई सीमित रह सकती है।[23] इसके अतिरिक्त, भाषा-सीमा के कारण कुछ क्षेत्रीय भाषाओं (विशेषतः उर्दू, जिसमें प्रेमचंद ने प्रारंभिक रचनाएँ लिखीं) में उपलब्ध आलोचनात्मक साहित्य को पूर्णतः सम्मिलित नहीं किया जा सका, जो भविष्य के अध्ययनों के लिए एक महत्वपूर्ण दिशा हो सकती है। इसके बावजूद, प्रस्तुत विश्लेषण प्रेमचंद-अध्ययन के क्षेत्र में विद्यमान प्रवृत्तियों और रिक्तियों की एक स्पष्ट तस्वीर प्रस्तुत करता है, जो भावी शोध को दिशा दे सकती है, विशेषतः अंतर्विषयी और तुलनात्मक अध्ययनों के क्षेत्र में।

6. निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध-पत्र ने पूर्ववर्ती अकादमिक साहित्य के व्यवस्थित मेटा-विश्लेषण के माध्यम से यह स्थापित किया है कि प्रेमचंद की रचनाओं में सामाजिक विषमता का चित्रण और मानवीय संवेदनाओं का उत्खनन एक-दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। उनका साहित्य औपनिवेशिक भारत के ग्रामीण एवं नगरीय समाज की आर्थिक विषमता, जातिगत संरचना और लैंगिक असमानता का प्रामाणिक दस्तावेज़ीकरण करते हुए भी शुष्क समाजशास्त्रीय विवरण नहीं बनता, क्योंकि प्रत्येक पात्र की पीड़ा, संघर्ष और आत्म-गरिमा की चाह उसे गहन मानवीय आयाम प्रदान करती है। विगत छह दशकों के आलोचनात्मक साहित्य की समीक्षा से यह भी स्पष्ट हुआ कि प्रेमचंद-अध्ययन क्रमशः एकांगी सामाजिक-यथार्थवादी व्याख्या से बहु-दृष्टिकोणीय, अंतर्विषयी विश्लेषण की ओर विकसित हुआ है, यद्यपि इसमें अभी भी कुछ रिक्तियाँ-विशेषतः शिल्पगत तुलनात्मक अध्ययन, दलित-आत्मकथन की दृष्टि से पुनर्मूल्यांकन, तथा मात्रात्मक-गुणात्मक पद्धतियों के समन्वय-विद्यमान हैं। यह मेटा-विश्लेषण भविष्य के शोधार्थियों के लिए एक ठोस संदर्भ-आधार प्रस्तुत करता है, जो उन्हें विद्यमान शोध-प्रवृत्तियों को समझने तथा नए, अनछुए आयामों की ओर अग्रसर होने में सहायक होगा। अंततः यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद का साहित्य आज भी-जब भारतीय समाज नई किंतु संरचनात्मक रूप से समान असमानताओं से जूझ रहा है-अपनी सामाजिक प्रासंगिकता और मानवीय गहराई दोनों में उतना ही जीवंत है जितना अपने रचना-काल में था।

संदर्भ सूची

- [1] आर.वी. शर्मा, "प्रेमचंद और उनका युग" (प्रेमचंद और उनका युग), नई दिल्ली, भारत: राजकमल प्रकाशन, 1986।
- [2] एन. सिंह, "प्रेमचंद और भारतीय समाज" (प्रेमचंद और भारतीय समाज), दिल्ली, भारत: वाणी प्रकाशन, 1990।

- [3] के.के. गोयंका, "प्रेमचंद की संपूर्ण कहानियाँ" (प्रेमचंद की संपूर्ण कहानियाँ), खंड। 1-5, नई दिल्ली, भारत: सामायिक प्रकाशन, 2005.
- [4] एम. गोपाल, "मुंशी प्रेमचंद: एक साहित्यिक जीवनी," नई दिल्ली, भारत: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1964.
- [5] जी. राय, "प्रेमचंद: उनका जीवन और समय," नई दिल्ली, भारत: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1982.
- [6] एस. गुप्ता, "प्रेमचंद का उपन्यास साहित्य" (प्रेमचंद का उपन्यास साहित्य), इलाहाबाद, भारत: लोकभारती प्रकाशन, 1978.
- [7] पी. स्वान, "लमही गाँव के मुंशी प्रेमचंद," डरहम, एनसी, यूएसए: ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस, 1969.
- [8] ए. रुबिन, अनुवादक, "प्रेमचंद की दुनिया: चुनी हुई कहानियाँ," नई दिल्ली, भारत: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1969.
- [9] आर. एस. मैकग्रेगर, "बीसवीं सदी का हिंदी साहित्य," विस्बाडेन, जर्मनी: ओटो हैरासोवित्ज़, 1974.
- [10] वी. डालमिया, "हिंदू परंपराओं का राष्ट्रीयकरण," दिल्ली, भारत: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1997.
- [11] एफ. प्रिचेट, "प्रेमचंद की दुनिया: एक पुनर्मूल्यांकन", जे. साउथ एशियन लिट., खंड 21, संख्या 2, पृष्ठ 45-58, 1986.
- [12] एस. सहाय, "नारी विमर्श और प्रेमचंद का साहित्य" (नारीवादी विमर्श और प्रेमचंद का साहित्य), हिंदी अनुसंधान पत्रिका, खंड 12, संख्या 3, पृ. 22-34, 2001.
- [13] यू. चक्रवर्ती, "जेंडरिंग कास्ट: थू ए फेमिनिस्ट लेंस" कोलकाता, भारत: स्त्री प्रकाशन, 2003.
- [14] ए. राय, "हिंदी राष्ट्रवाद" हैदराबाद, भारत: ओरिएंट लॉन्गमैन, 2001.
- [15] आर. त्रिवेदी, "रीडिंग प्रेमचंद: जाति और प्रतिनिधित्व की राजनीति" इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, खंड 46, संख्या 18, पृष्ठ 61-68, 2011.
- [16] डी. रुबिन, "मार्क्सवादी विश्लेषण के लिए एक उपयुक्त मामला? प्रेमचंद का गोदान" साउथ एशियन रेव., खंड 15, संख्या 1, पृ. 33-47, 1991.
- [17] सी. कोपोला, "प्रेमचंद के कफन : एक आलोचनात्मक अध्ययन", जर्नल ऑफ साउथ एशियन स्टडीज, खंड 8, संख्या 2, पृष्ठ 101-115, 1985.
- [18] एस. चतुर्वेदी, "प्रेमचंद के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन", हिंदी साहित्य सम्मेलन पत्रिका, खंड. 40, पृष्ठ 12-25, 1995.

- [19] बी. अमीन, "प्रेमचंद की कहानियों में मानव संबंध" (प्रेमचंद की कहानियों में मानवीय संबंध), भोपाल, भारत: मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, 1988.
- [20] के. सच्चिदानंदन, सं., "भारतीय साहित्य: स्थितियां और प्रस्ताव", दिल्ली, भारत: पेनक्राफ्ट इंटरनेशनल, 1999.
- [21] आर. द्विवेदी, "हिंदी साहित्य का इतिहास" (हिंदी साहित्य का इतिहास), वाराणसी, भारत: विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1966.
- [22] ए. गुहा, "प्रेमचंद और किसान का सवाल", इतिहास में अध्ययन, खंड 9, संख्या. 2, पृ. 201-219, 1993.
- [23] एन. कुमार, "प्रेमचंद के गोदान में किसान चेतना," आधुनिक एशियाई अध्ययन, खंड. 27, सं. 3, पृ. 543-561, 1993.
- [24] पी. चटर्जी, "राष्ट्र और उसके टुकड़े," प्रिंसटन, एनजे, यूएसए: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1993.
- [25] एच. त्रिवेदी, "औपनिवेशिक लेन-देन: अंग्रेजी साहित्य और भारत," कलकत्ता, भारत: पेपिरस, 1993.
- [26] एम. असदुद्दीन, "विश्व भाषाओं में प्रेमचंद: अनुवाद और स्वागत," ट्रांसलेशन टुडे, खंड. 3, सं. 1-2, पृ. 89-104, 2006.
- [27] एस. कुमार और आर. गुप्ता, "प्रेमचंद के उपन्यासों में विषयगत पैटर्न का कम्प्यूटेशनल विश्लेषण," अंतर्राष्ट्रीय जे. डिजिटल मानविकी, खंड 4, सं. 1, पृ. 55-70, 2022.
- [28] एल. शर्मा, "दलित चेतना और प्रेमचंद का साहित्य" (दलित चेतना और प्रेमचंद का साहित्य), दिल्ली, भारत: वाणी प्रकाशन, 2010.
- [29] डी. वासुदेवन, "यथार्थवाद का पुनर्मूल्यांकन: प्रेमचंद और प्रतिनिधित्व की समस्या," दक्षिण एशियाई इतिहास और संस्कृति, खंड 6, सं. 4, पृ. 512-528, 2015.
- [30] आई. हबीब, "भारतीय अर्थव्यवस्था का उपनिवेशीकरण," सामाजिक वैज्ञानिक, खंड 3 8, पृ. 23-53, 1975.